इकाई 6 चीन में अफ़ीम युद्ध

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य चीन में अफीम युद्धों की नाटकीय घटनाओं (1840-42 और 1858-60) के बारे में आपको जानकारी देना और इन घटनाओं को 19वीं शताब्दी में चीन तथा पश्चिमी देशों के बीच विकसित होने वाले संबंधों के संदर्भ में रखकर देखना है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अफीम युद्धों की पृष्ठभूमि और उनकी मुख्य घटनाओं के बारे में जान सकेंगे,
- इस दौर में चीन में पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति पर चीन की प्रतिक्रिया को समझ सकेंगे, और
- इन युद्धों की प्रकृति और प्रभाव का, तथा आधुनिक चीन के इतिहास में इनके महत्व का आकलन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अफीम युद्ध चीन और आधुनिक पश्चिमी देशों के बीच पहले बड़े सशस्त्र टकराव के प्रतीक हैं। लेकिन, इससे भी अधिक वे चीनी इतिहास का एक महत्वपूर्ण मोड़ थे। यह इसलिए, क्योंकि इन युद्धों ने चीनी साम्राज्य की सैनिक, प्रौद्योगिक और राजनीतिक कमज़ोरियों की कलई खोल कर रख दी। इन युद्धों के कारण चीन के पश्चिमी देशों के साथ संबंधों में ऐसे विकास आए कि पश्चिमी देशों ने अपनी श्रेष्ठ सैनिक शक्ति का इस्तेमाल करके चीनी साम्राज्य से एक के बाद एक कई रियायतें लें लीं और चीन में अपने हितों को सुदृढ़ कर उन्हें बढ़ा भी लिया। इसके अलावा, उन्होंने चीनी साम्राज्य के टूटने की प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया। उन्होंने सुधार, आधुनिकीकरण और राष्ट्रवाद की ताकतों को बढ़ावा दिया, जिन्होंने एक नए चीन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में, सभी विद्वान समान रूप से आधुनिक चीनी इतिहास की शुरुआत को अफीम युद्धों के दौर से मानते हैं। इन सभी कारणों से, चीनी इतिहास के किसी भी विद्यार्थी के लिए अफीम युद्धों के बारे में जानना महत्वपूर्ण हो जाता है। आगामी अनुच्छेदों में इन युद्धों से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है।

6.2 पृष्ठभूमि

अफीम युद्धों को ठीक से समझने के लिए हमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालनी होगी।

6.2.1 पारंपरिक चीन के विदेशों से संबंध की कुछ विशेषताएं

चीनी साम्राज्य के बाहरी संबंधों और पारंपरिक चीन के विश्व के प्रति दृष्टिकोण के बारे में इस पाठ्यक्रम के खंड 1 की इकाई 2 में पहले ही समझाया जा चुका है। फिर भी, अफीम युद्धों के संदर्भ को समझने के लिए इनमें से कुछ के बारे में एक बार फिर चर्चा कर लेना महत्वपूर्ण है।

पारंपरिक चीन की विदेश संबंधों की व्यवस्था को दो महत्वपूर्ण कारकों ने आकार दिया। इनमें से एक था – पूर्वी एशिया में चीनी साम्राज्य की महत्वपूर्ण स्थिति – इसका विशाल आकार, संपदा, ताकत, ऊंचा सांस्कृतिक स्तर तथा अधिकांश भौतिक मूल्यों में बुनियादी आत्म-निर्भरता। दूसरा कारक था चीन की उत्तरी और पश्चिमी सीमाओं पर हर समय खानाबदोश और अर्ध-खानाबदोश लोगों की ओर से सैनिक खतरे का बना रहना। इन दोनों कारकों ने मिलकर पारंपरिक चीन के विदेशों से संबंधों और विश्व के प्रति उसके दृष्टिकोण की कुछ परस्पर विरोधी दिखने वाली विशेषताओं को जन्म दिया। एक ओर, इसने आत्म-संतोष, आत्म-विश्वास तथा अभिमान को जन्म दिया, जिसके कारण चीनी दूसरी कौमों और राज्यों के प्रति अशिष्टतापूर्ण रवैया रखते थे (जिसे आधुनिक विद्वान कभी-कभी "साइनोसेंट्रिज्म" – चीनी केंद्रीयता कह देते हैं)। दूसरी ओर, इसने विदेशी कौमों और देशों के साथ चीनी साम्राज्य के वास्तविक व्यवहारों में एक हठी व्यावहारिकता और यर्थाथवाद को, और असुरक्षा के एक निश्चित बोध को जन्म दिया। इसलिए पारंपरिक चीन के विदेशी संबंधों की व्यवस्था एक अत्यंत जटिल और विषम तंत्र था, जिसमें सांस्कृतिक, सैनिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

अपने 2000 वर्षों से भी अधिक के इतिहास में चीनी साम्राज्य के दूसरे देशों के साथ संबंधों में कई उतार-चढ़ाव आए। शांतिपूर्ण आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संबंधों के लंबे दौर रहे, जिनमें चीनी साम्राज्य को क्षेत्र में अपनी सर्वोच्चता के खिलाफ किसी बड़े बाहरी खतरे या चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा। वहीं सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली पड़ोसी कौमों की ओर से बार-बार हमले हुए, जिनके परिणामस्वरूप उन्होंने कभी-कभी पूरे चीन या उसके कुछ हिस्से पर कब्जा कर लिया। फिर भी, कुछ शताब्दियों के विकास के बाद, दूसरे राज्यों और कौमों के साथ नियमित शांतिपूर्ण संपर्क के अत्यधिक स्पष्ट और व्यवस्थित तरीके वजूद में आए।

आज हम "घरेलू या अंदरूनी मामलों" और "बाहरी अथवा विदेशी मामलों" को जिस तरह से अलग-अलग रखकर समझते हैं, पारंपरिक चीनी सिद्धांत में इस तरह का कोई स्पष्ट अंतर नहीं था। चीन का सम्राट "स्वर्ग के तले सभी प्राणियों" का शासक माना जाता था। इसलिए, चीनी साम्राज्य की बाहरी सीमाएं स्पष्ट रूप से अंकित नहीं थीं। फिर भी, इतिहास में भी यह मान्यता थी कि साम्राज्य के सीमांचलों पर तथा कथित "बर्बर" लोग रहते थे, जिनके सांस्कृतिक अथवा सामाजिक तौर-तरीके चीनियों से भिन्न थे, और उनके अपने शासक तथा शासन-तंत्र थे। इस "बर्बर" शब्द के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। विशेष तौर पर आधुनिक पश्चिम देशों के विद्वानों और अधिकारियों ने इस शब्द की विवेचना गैर-चीनी कौमों के प्रति झूठी निंदा और बैर के एक रूप की तरह की है, और इसे गलत समझा है। फिर भी, चीनी अर्थ में "बर्बर" को इस तरह समझना अधिक उपयुक्त होगा कि ये वे लोग थे जो बस चीनियों से भिन्न थे, जो चीनियों के तौर-तरीकों को पूरी तौर पर नहीं मानते थे।

चीनी लोग इन विदेशी कौमों के साथ व्यवहार रखने के तरीके निकालने की आवश्यकता को मानते तो थे, लेकिन चीनी साम्राज्य के साथ संबंध बनाने की पहल इन कौमों की ओर से ही हुई, स्वयं चीनी साम्राज्य की ओर से नहीं। इसका अपवाद चीनी इतिहास के वे थोड़े से दौरे (जैसे हान और तांग वंशों के दौर) थे जब चीन के शासकों ने प्रसार और विजय के महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों को शुरू किया। आम तौर पर, कई विदेशी कौमें और कई राज्यों के राजदूत:

- व्यापार के उद्देश्य से,
- सांस्कृतिक अथवा धार्मिक उद्देश्यों से; अथवा

- चीनी सम्राट की ओर से राजनीतिक मान्यता अथवा वैधता पाने के उद्देश्य से चीन में आए।

सीमा व्यापार करने वालों और तीर्थ यात्रियों जैसे लोगों के मामलों को आम तौर पर उन क्षेत्रों के स्थानीय अधिकारी देखते थे जिन क्षेत्रों में ये लोग जाते थे। सम्राट के दरबार में आने वाले सरकारी राजदूतों के मामले को अनुष्ठान परिषद देखती थी, जिसका काम प्रोटोकोल संबंधी मामलों को देखना था। लेकिन, यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों तक चीन में विदेशी संबंधों के लिए कोई केंद्रीय विभाग या मंत्रालय नहीं था।

यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि चीनी साम्राज्य का संपर्क और आदान-प्रदान जिन कौमों और राज्यों से होता था, उनसे व्यवहार के लिए वह व्यापक किस्म के नियमों तथा रीतियों से काम लेता था, फिर भी, मुख्य तौर पर 19वीं शताब्दी तथा उसके बाद के पश्चिमी पर्यवेक्षकों और विद्वानों के कारण, विदेशी संबंधों की पारंपरिक चीनी व्यवस्था को एक रूढ़ व्यवस्था के रूप में चित्रित किया गया है जिसकी पहचान मुख्य तौर पर दो विशेषताओं से होती है – नज़राना देना, और "कोटो" या सिजदा करना। चीनी लोग नज़राना उन उपहारों को कहते थे जो सरकारी विदेशी प्रतिनिधि सम्राट को देते थे, और "कोटो" वह आनुष्ठानिक सिजदा था जिसे सम्राट के सामने करने की उनसे अपेक्षा की जाती थी। यह सही है कि नज़राना और सिजदा दोनों की व्यवस्था चीनी सम्राट की सर्वोच्चता पर ज़ोर देने के लिए की गई थी, और यह सर्वोच्चता, अधिकांश पश्चिमी ताकतों और उनके राजदूतों को मान्य नहीं थी। लेकिन, चीनी इस बात पर अड़ते नहीं थे कि चीन में आने वाले सभी विदेशी नज़राना दें और सिजदा करें ही, वे तो केवल उन राजदूतों की ओर से ऐसी औपचारिकताओं पर ज़ोर देते थे जो यह चाहते थे कि स्वयं सम्राट उनका स्वागत करें। उन्होंने उन तमाम लोगों के लिए इसे शर्त नहीं बनाया था, जो व्यापार अथवा अन्य कामों में हिस्सा लेना चाहते थे। कैंटन में व्यापार करने वाले अरबों के साथ, और 17वीं शताब्दी से पीकिंग में रह रहे रूसियों के साथ, होने वाला व्यवहार इस तरह के मामलों में चीनियों की लोचदार नीति के उदाहरण हैं। ब्रिटेन और दूसरी पश्चिमी ताकतों ने जो 19वीं शताब्दी के मध्य में चीन से लड़ाई की और इसे विदेशों के साथ अपने व्यवहार को बदलने के लिए बाध्य किया, उसका कारण नज़राना या सिजदा इतना नहीं थे, जितना दूसरे आवश्यक आर्थिक और राजनीतिक मामले।

6.2.2 चीन और पश्चिमी देशों के बीच शुरुआती संपर्क और कैंटन व्यवस्था

सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पुर्तगालियों के दक्षिणी चीनी समुद्री तट पर पहुँचने के बाद से ही चीन और यूरोप के बीच समुद्री व्यापार का प्रचलन हो गया था। पूरी एक शताब्दी के बाद, पुर्तगालियों के साथ ब्रिटिश और डच भी मिल गए, जो बड़ी समुद्री शक्तियों के रूप में उभर रहे थे। चीन के साथ ब्रिटिश या अंग्रेजों का व्यापार ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार था।

17वीं शताब्दी के मध्य से 18वीं शताब्दी के मध्य के दौर में इस समुद्री व्यापार में कई उतार-चढ़ाव आए। पहले तो, इसका कारण चीन के ही अंदर होने वाली अंदरूनी राजनीतिक घटनाएं थीं। 1644 में, तीन शताब्दियों से शासन कर रहे मिंग वंश का तख्ता पलट दिया गया और उत्तर-पूर्वी सीमाओं के पार से आने वाली एक गैर-चीनी कौम मांचू ने उत्तरी चीन पर अधिकार जमा लिया। मांचुओं ने सफलतापूर्वक अपने चिंग वंश की स्थापना की और पेकिंग को अपनी राजधानी बना लिया। यह सब उन्होंने बहुत तेजी के साथ किया। लेकिन पूरे चीन पर अपना पूर्ण अधिपत्य जमाने में उन्हें लगभग दो दशकों तक खूनी गृह युद्ध से निपटना पड़ा। इन नए शासकों का विरोध मुख्य तौर पर दक्षिणी और मध्य चीन के तटीय प्रांतों और ताइवान द्वीप की ओर से हो रहा था। इसलिए इस दौर में तटीय व्यापार का गड़बड़ा जाना स्वाभाविक ही था। दरअसल, मांचुओं ने 1661-1669 के बीच आठ साल के दौर में दक्षिणी-मध्य तट की 25 किलोमीटर चौड़ी पट्टे पर रहने वाली पूरी की पूरी आबादी को वहाँ से बेदखल कर देने का असाधारण कदम उठाया। इन उपायों को हटा लिए जाने और चिंग वंश का विरोध समाप्त हो जाने के बाद भी चिंग शासकों ने समुद्री गतिविधयों पर, और विशेष तौर पर विदेशियों के साथ स्थानीय चीनवासियों के किसी भी व्यवहार पर, संदेह करना नहीं छोड़ा। वे समुद्र को डाकुओं और तस्करों की खोह भी मानते थे और उनका ऐसा सोचना गलत भी नहीं था। समुद्र की ओर से संदेह डर के बावजूद, मांचुओं ने मज़बूत नौसेना न तो बनाई और न ही बरकरार रखी। उन्होंने उपद्रवियों को समुद्र से दूर रखने तथा तटीय

क्षेत्रों में व्यवस्था बनाए रखने के लिए मुख्य तौर पर तटीय किलेबंदियों और दूसरे सुरक्षात्मक उपायों पर निर्भर किया।

लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि चिंग शासक यूरोपियों के साथ नियंत्रित व्यापार और दूसरे संबंधों के पक्ष में नहीं थे। विदेशियों के साथ व्यापार के लिए चार बंदरगाहों – कैंटन, अमोई, निंगपो और कुआन-युन को मुक्त रखा गया था। कांग-शाई सम्राट के राज्यकाल में यूरोपियों और विशेष तौर पर जेसुइटों, का स्वागत किया गया। लेकिन फिर 1718 में रोम के पोप के साथ एक कड़वे मतभेद के बाद यूरोपियों के प्रति चिंग सरकार के रवैये में नाटकीय बदलाव आ गया। उन्हें कैंटन के बंदरगाह से भी निकाल दिया गया, जहाँ वे एक बहुत बड़ी तादाद में रह रहे थे। उन्हें व्यापार करते रहने की अनुमति तो दी गई, लेकिन उसके बाद उन्हें केवल मकाओ द्वीप में ही रहने की छूट दी गई। कमोडोर ऐनसन और जेम्स फ्लिंट जैसे कुछ अंग्रेज़ व्यापारियों और साहसिक यात्रियों ने बल प्रयोग के माध्यम से इन प्रतिबंधों को चुनौती देने की कोशिश की, लेकिन उससे कोई बात नहीं बनी। विदेशियों की ओर से इस तरह की शरारत के खिलाफ चिंग सरकार ने तीखी प्रतिक्रिया की। और 1757 में एक कैंटन बंदरगाह को छोड़कर बाकी सारे बंदरगाहों को विदेशियों के लिए बंद कर दिया। इस तरह "कैंटन व्यवस्था" की स्थापना हुई, जो अफीम युद्धों तक चीन और पश्चिमी देशों के बीच व्यापारिक संबंध का एकमात्र मान्य स्वरूप बनी रही।

कैंटन व्यवस्था से आशय उन तमाम व्यापारिक प्रबंधों से है जो 1757 और 1842 के बीच पश्चिमी देशों के लिए उपलब्ध थे। विदेशी व्यापारियों ने कैंटन में व्यापारिक प्रतिष्ठान बनाकर रखे, जिन्हें गोदामों के तौर पर भी इस्तेमान किया जाता था (इन्हें "फैक्ट्री" या कारखाना कहा जाता था) वे लोग साल के अधिकांश समय मकाओ में रहते थे, लेकिन हर साल जब उनके देश से उनके जहाज़ आते तो ये व्यापारी पर्ल नदी के मुहाने से जहाज़ से कैंटन चले जाते थे, जहाँ वे अगस्त से मार्च तक के व्यापार के समय तक रहते थे। उन्हें अपने साथ अपने परिवारों को लाने की अनुमति नहीं थी, और वे व्यापार के ठिकाने के अंदर ही आ जा सकते थे।

कैंटन में, पश्चिमी व्यापारियों के सभी व्यापारिक लेन-देन "को-हांग" के माध्यम से होते थे। "को-हांग" जाने-माने स्थानीय सौदागरों की एक समिति थी, जिसके व्यापार पर एकाधिकार को चिंग सरकार की मान्यता मिली हुई थी। इस सरकारी मान्यता के बदले में, हांग सौदागर व्यापार के तमाम प्रबंधों को देखते थे, विदेशी व्यापारियों को आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराते थे और उनके अच्छे व्यवहार की जमानत देते थे। वे मिलकर शाही सरकार के अधिकारियों के प्रति जिम्मेदार थे, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण थे लियांगक्वांग (जिसमें कैंटन आता था) का वाइसराय और समुद्री सीमा-शुल्क का अधीक्षक (जिसे "होप्पो" कहा जाता था); इनका काम कैंटन के व्यापार से राजस्व इकट्ठा करके उसे पीकिंग स्थित शाही सरकार के पास जमा कराना था।

पश्चिमी व्यापारियों को किसी भी कारण से सीधे शाही अधिकारियों से सपंर्क करने की छूट नहीं थी, लेकिन वे अपनी तमाम शिकायतों, निवेदनों आदि को हांग सौदागरों के ज़रिए संबंधित अधिकारी तक पहुँचा सकते थे। हांग सौदागरों के आलावा अगर वे और किसी चीनी के साथ सीधे कोई आदान-प्रदान करते थे, तो वे लोग थे जो उन्हें आवश्यक सेवाएं प्रदान करते थे – जैसे उनके घरेलू नौकर, भाषाविद् (दुभाषिए और रक्षक), और सबसे महत्त्वपूर्ण "कम्प्रेडर" लोग, जो चीनी ही होते थे और जिनका काम विदेशी कंपनियों के लिए व्यापार का स्थानीय पहलू संभालना था।

कैंटन व्यवस्था के प्रतिबंधी स्वरूप के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है :

- विदेशी व्यापारियों की गतिविधियों और आने-जाने की स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों के बारे में,
- विदेशी मूल्य पर लगाए गए करों और शुल्कों की कठोरता के बारे में,
- भ्रष्टाचार की सीमा के बारे में, आदि-आदि।

लेकिन इन शिकायतों को उनके उचित परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि कैंटन विदेशी व्यापार के लिए मुक्त रखा जाने वाला एकमात्र बंदरगाह था, फिर भी यह एक सुविकसित बंदरगाह था जिसमें व्यापार के संचालन के लिए आवश्यक तमाम तामझाम और सुविधाएं उपलब्ध थीं, और अंदरूनी हिस्सों के साथ आपूर्ति या वितरण और संचार के अच्छे माध्यम भी थे। विदेशी व्यापार के लिए जब दूसरे बंदरगाह खुले हुए थे (1757 से पहले), उस समय भी विदेशी व्यापारियों को ये बंदरगाह उपयक्तता की दृष्टि से कैंटन के आसपास

अफीम युद्धों के समय कैंटन
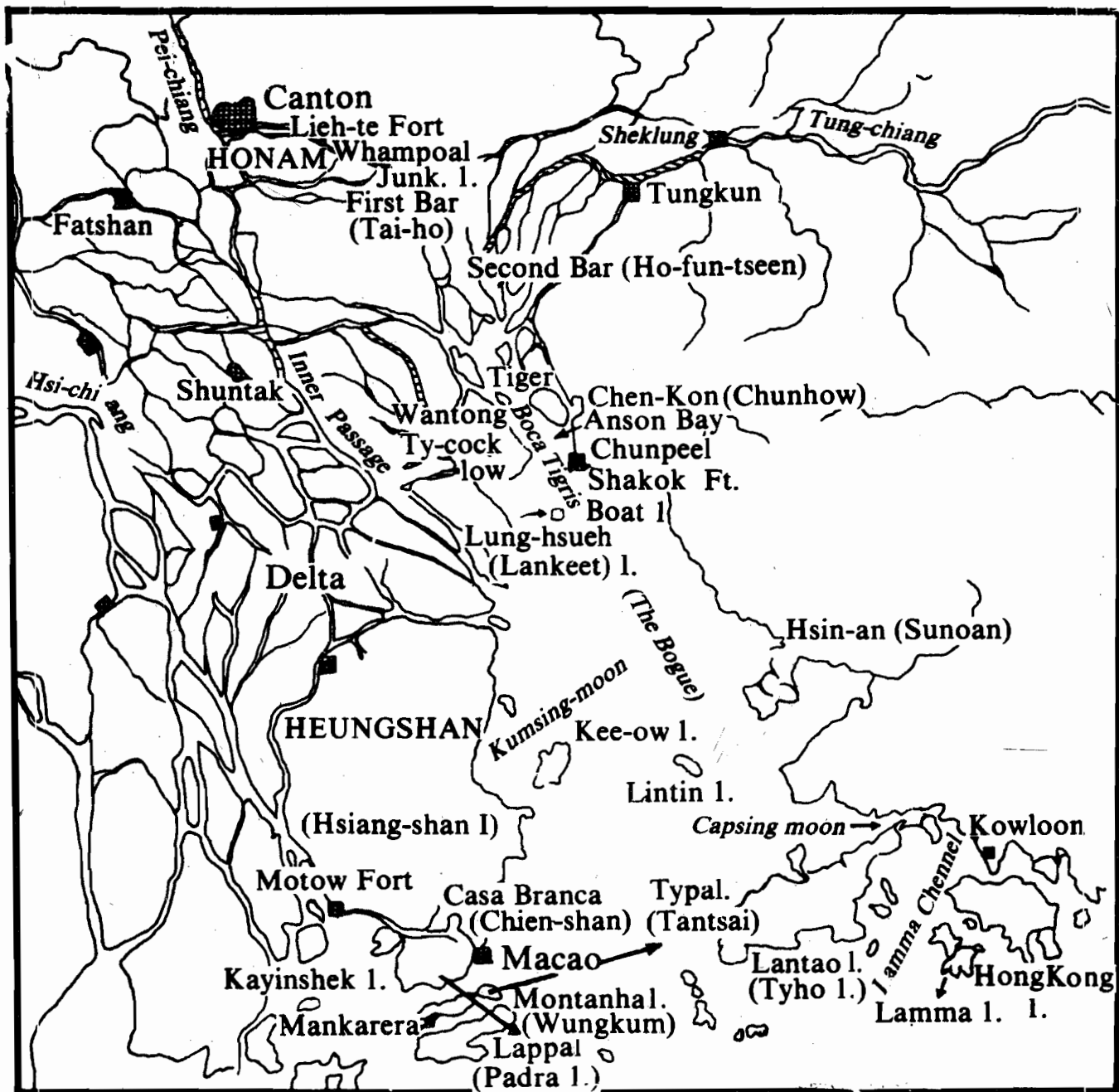
कहीं भी टिकते नहीं दिखे थे, और उन्होंने अपनी सारी गतिविधियों को कैंटन के आसपास ही केंद्रित कर रखा था। इसके आलावा, चीनियों की ओर से व्यापार यद्यपि एक एकाधिकार वाला व्यापार था, यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अंग्रेज़ों की ओर से भी, चीनी व्यापार में एक ही कंपनी का एकाधिकार था। चीन में ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार 1834 में जाकर ही समाप्त हुआ। इसी तरह, यूरोपियों के आने-जाने पर, चीनी अधिकारियों के साथ सीधे संपर्क करने की उनकी क्षमता आदि पर जो प्रतिबंध लगे थे, उन्हें हो सकता है लज्जाजनक माना जाता रहा हो, लेकिन वे व्यापार के संचालन में कोई उल्लेखनीय बाधा नहीं डाल पाए। चीनियों ने व्यापार पर जो विभिन्न शुल्क और उगाही लगाई, उनसे भी विदेशी कंपनियों को भारी मुनाफा कमाने से नहीं रोका जा सका और वे साल दर साल कैंटन में वापस आते रहे।

लेकिन फिर भी, एक बात थी जो सचमुच विदेशी व्यापारियों के लिए परेशानी का कारण थी : ऐसे बहुत कम सामान थे जिनकी मांग चीनियों में हो और जिन्हें वे दे सकें। पश्चिमी लोग तो चीन से भारी मात्रा में चाय, रेशम और दूसरी वस्तुएँ खरीदते थे, तथा उन्हें इनकी कीमत सोने तथा चांदी में चुकानी पड़ती थी। यह अनुमान लगाया जाता है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के चीन जाने वाले जहाज़ों में 90 प्रतिशत अथवा उससे भी अधिक मुख्य तौर पर सोना होता था। लेकिन, 1820 के दशक के मध्य में इस स्थिति में नाटकीय बदलाव आने लगा, जब पश्चिमी व्यापारियों को एक ऐसी चीज़ हाथ लग गई, जिसकी मांग चीनियों में तेज़ी के साथ बढ़ती गई। वह चीज़ थी अफीम।

6.2.3 अफीम का व्यापार

पोस्त के फूल के मिलने वाले नशीले पदार्थ अफीम को सातवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में या आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में अरबों और तुर्कों ने चीन में प्रचलित किया था, तभी से चीनी इस नशीले पदार्थ को जानने लगे थे। प्रारंभ में तो इसका इस्तेमाल मुख्य तौर पर एक दवा या दर्द-शामक के रूप में होता था, लेकिन सत्रहवीं शताब्दी से चीनियों में नशे के लिए अफीम के धूम्रपान की आदत फैलने लगी। इस तरह से अफीम का सेवन करने से इसका सेवन करने वालों की शारीरिक और मानसिक स्थिति तेज़ी से बिगड़ने लगती थी। अफीम का धूम्रपान एक बुरी लत थी, यह व्यक्ति को तेज़ी से अपनी गिरफ्त में लेती थी ओर जिनको यह लत लग जाती थी, उन्हें अगर कुछ ही समय के लिए भी अफीम से वंचित रखा जाता था तो उन्हें
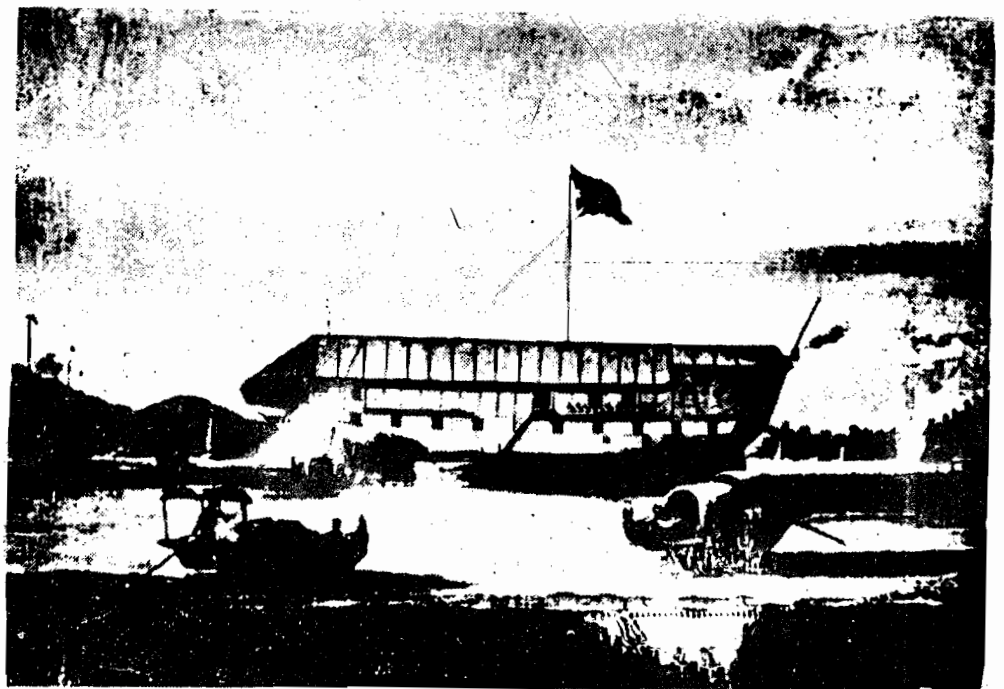
1. अफीम की तस्करी करने वाला जहाज

वास्तविक इलाज की आवश्यकता पड़ जाती थी। उनका जी मिचलाता था, बेचैनी महसूस होती थी, दर्द होता था, मांसपेशियों में अड़चन होती थी, ठंड महसूस होती थी, तड़क होती थी, नींद नहीं आती थी, आदि। लोगों में अफीम की आदत फैलने के साथ, शाही सरकार को इस ओर ध्यान देना ही पड़ा। 1729 में, इसके आयात और खेती पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया।

इन प्रतिबंधों के बावजूद, चीन में अफीम का आयात 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और विशेष तौर पर 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में तेज़ी से बढ़ा। 1729 में तो अफीम का सालाना आयात 200 पेटियाँ था, जबकि 1767 में यह 1000 पेटियां हो गया। 1800 और 1820 के बीच यह संख्या 4,500 पेटियों तक पहुँच गई। 1838-39 में, चीन और ब्रिटेन में वैमनस्य बनने से ठीक पहले, यह संख्या 40,000 पेटियों तक आ गई। यह आकलन किया गया है कि इस दौर में चीन में अफीम का नशा करने वालों की संख्या कोई एक करोड़ थी, जिसमें 10 से 20 प्रतिशत तक केंद्रीय सरकार के अधिकारी थे, 20 से 30 प्रतिशत स्थानीय सरकारी अधिकारी थे, और मांचू के सैनिक बलों की एक बड़ी संख्या शामिल थी।

चीन में अफीम का आयात करने वालों में सबसे आगे अंग्रेज़ थे। लेकिन अंगेज़ों का अफीम व्यापार बड़े घुमावदार तरीके से चलता था। अफीम भारत में उगाई जाती थी और खेती से लेकर तैयार करने तक की पूरी प्रक्रिया अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार थी। फिर भी, अफीम के आयात पर चीन में सरकारी प्रतिबंध लगा होने के कारण, ईस्ट इंडिया कंपनी चीन में अफीम के आयात से सीधे-सीधे नहीं जुड़ना चाहती थी, क्योंकि उसे डर था कि इससे उसके चीन के साथ कुल व्यापार को धक्का पहुँचेगा। इसलिए भारत से चीन में अफीम पहुँचाने का काम निजी व्यापारियों से लिया जाता था, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के लाइसेंस के अधीन यह काम करते थे। चीनी और विदेशी तस्करों के एक संगठित जाल और उनके सहयोगियों का यह काम था कि वे चीन में अफीम के वितरण को सुनिश्चित करें। निजी व्यापारी अपने अफीम की खेप को "आदाता" (या पाने वाले जहाज़ों) में जमा कर देते थे जो चीनी तट पर लिनटिन द्वीप के आसपास लंगर डाले खड़े रहते थे। वहाँ से चीनी अफीम व्यापारी अफीम को छोटी-छोटी हथियारबंद और तेज़ गति वाली नावों में ले जाते थे जो चीन के सरकारी गश्ती दलों को झांसा देने में निपुण थीं। इन नावों से अफीम की खेप को उन अफीम व्यापारियों तक पहुँचा दिया जाता था जो चीनी तट के विभिन्न स्थलों पर इसकी प्रतीक्षा में रहते थे, वहाँ से अफीम को अंदरूनी हिस्सों में वितरित कर दिया जाता था (देखिए मानचित्र)।

इसमें कोई संदेह नहीं कि चीन में स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना अफीम का व्यापार इतना फल-फूल नहीं सकता था। एक ओर चीन के नौसैनिक बलों और सीमा शुल्क सेवा की अक्षमता ने तस्करों के काम को सुगम कर दिया और इस बात को संभव कर दिया कि वे बिना किसी दंड के अफीम के व्यापार पर लगे प्रतिबंधों का उल्लंघन कर सकें। लेकिन दूसरी ओर, सक्रिय सहयोग भी था। नाविकों और कुलियों से लेकर सम्पन्न बैंकों तथा अफीम खानों के मालिकों तक लोगों का एक पूरा जाल था, जिन्होंने इस धंधे से खूब कमाई की और इसके चलते रहने में उनका निहित स्वार्थ था। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण विभिन्न स्तरों के उन अधिकारियों का सहयोग था, जो इस सबसे आंखें मूंदे हुए और, और भी सीधे-सीधे तरीकों से इस धंधे में सहयोग करते थे, जिसके बदले में उन्हें मुनाफे का एक हिस्सा मिलता था।

अफीम का नशा करने वालों की सेहत पर इसके हानिकारक प्रभावों के आलावा, अफीम के व्यापार के गंभीर आर्थिक परिणाम भी हुए। सबसे भयानक तौर पर प्रभावित क्षेत्रों में घरेलू या स्वदेशी व्यापार में एक समग्र मंदी आई। इसका कारण यह था कि मजदूरों और दूसरों की छोटी आमदनियों का एक बड़ा हिस्सा दूसरी आवश्यक वस्तुओं की खरीद के बजाय अफीम की खरीद में चला जाता था। लेकिन इससे भी बड़ा एक और आर्थिक संकट इस धंधे के कारण चांदी के बाहर जाने से भी बना। विदेशी व्यापार के और सामानों में से अलग, अफीम की कीमत चांदी में चुकाई जाती थी। अफीम का आयात तेज़ी से बढ़ने के साथ, चांदी की आवाजाही के संदर्भ में पलड़ा चीन के खिलाफ झुका। चीन में चांदी के अल्प भंडार होने से एक गंभीर आर्थिक संकट की स्थिति बनी। चांदी और तांबे के बीच विनिमय की दर गड़बड़ा गई, और इससे शाही खजाने में करों को जमा करने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल असर पड़ा।

इस तरह, 1830 का दशक आते-आते शाही सरकार अफीम व्यापार के बेरोकटोक विकसित होने और इसके हानिकारक परिणामों को लेकर गंभीरता से चिंतित हो उठी। सम्राट और उनके उच्च-स्तरीय अधिकारियों के बीच इस बात को लेकर गंभीर विचार-विमर्श हुआ कि
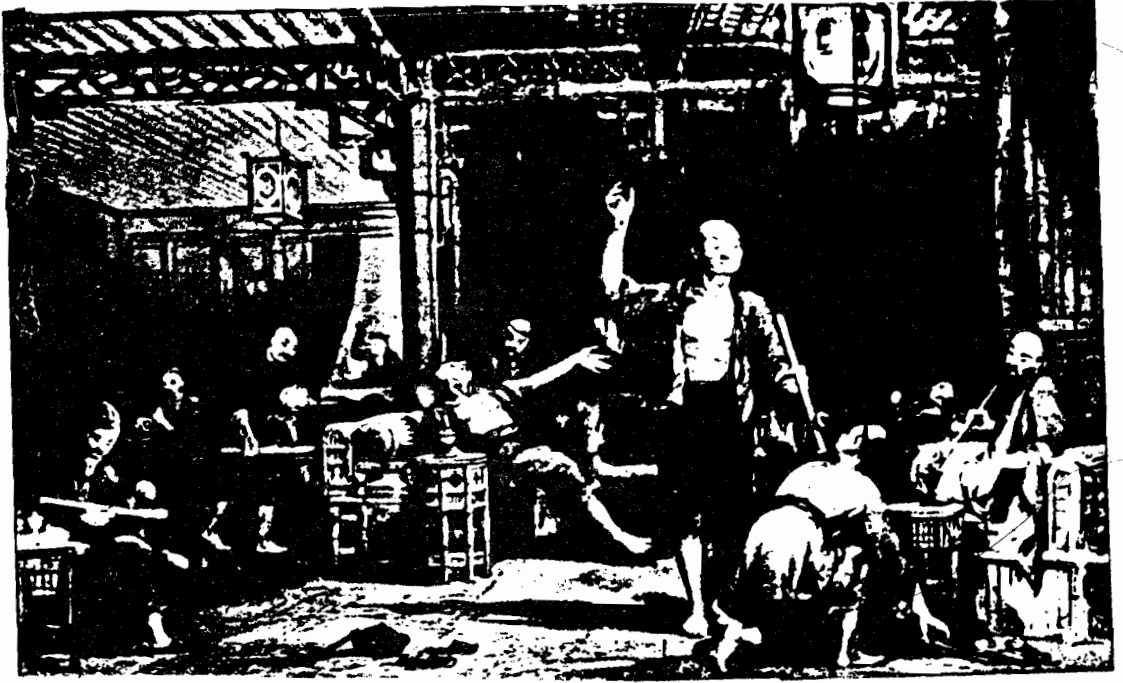
2. अफीम खाने वालों का अड्डा
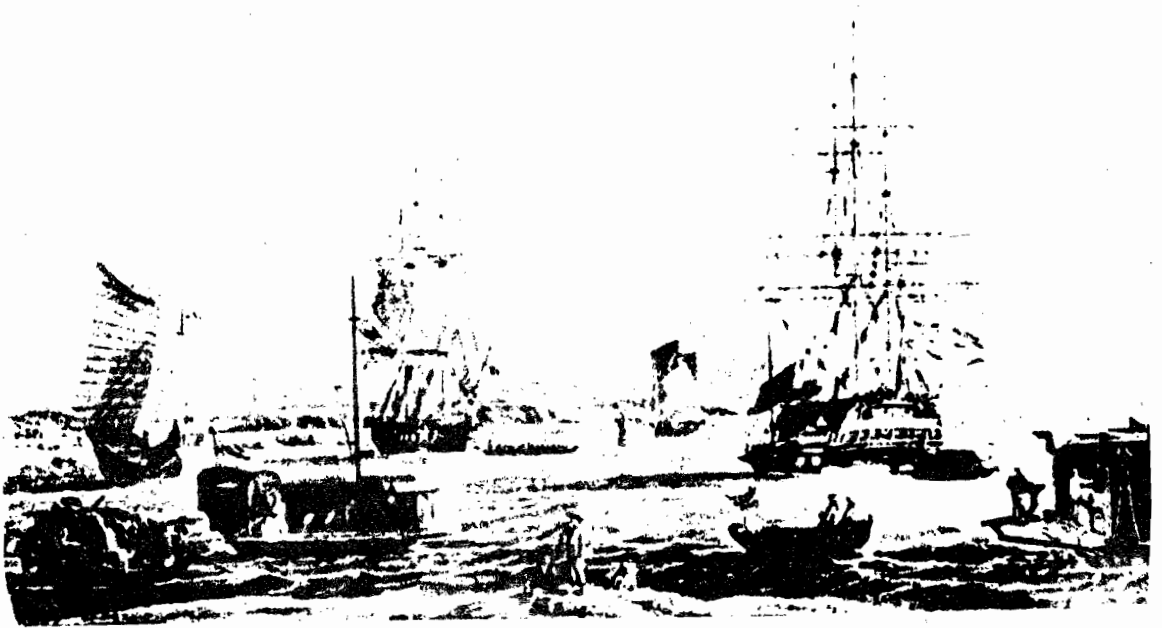
3. वामपोआ बन्दरगाह (कैंटन 1835)

इस बढ़ते संकट से कैसे निपटा जाए। इसके परिणामस्वरूप 1838-39 की महान "अफीम बहस" हुई, जिसमें सम्राट ने तमाम महा-राज्यपालों और दूसरे उच्च-स्तरीय अधिकारियों से सलाह मांगी। अफीम व्यापार पर कुछ अंश तक नियंत्रण पाने की गरज से इसे वैध ठहराने के विचार पर भी इस बहस में कुछ देर को गौर किया गया, लेकिन अंत में राय यही बनी कि अफीम पर लगे प्रतिबंध का कड़ाई से पालन किया जाए। जाने-माने अधिकारी लिन ज़िशु को शाही आयुक्त की हैसियत से एक विशेष जनादेश के साथ कैंटन भेजा गया कि वह अफीम के व्यापार को रोके। इस तरह चिंग सरकार और पश्चिमी ताकतों के बीच एक सीधे टकराव की आधार भूमि तैयार हो गई।

बोध प्रश्न 1

1) आप कैंटन व्यवस्था से क्या समझते हैं? पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) अफीम व्यापार के आर्थिक परिणाम चीन के लिए क्या रहे? लगभग पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-सा वक्तव्य सही (√) है, और कौन-सा गलत (×)?

i) पारंपरिक चीनी राजनीति सिद्धांत में "घरेलू मामलों" और "बाहरी संबंधों" के बीच अंतर था।

ii) पश्चिमी व्यापारी शाही अधिकारियों से सीधे संपर्क कर सकते थे।

iii) अंग्रेज़ों की ओर से, चीन के साथ व्यापार ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार था।

iv) ईस्ट इंडिया कंपनी ने अफीम व्यापार को अप्रत्यक्ष तौर पर समर्थन दिया।

v) अफीम व्यापार स्थानीय सहयोग के बिना फला-फूला।

6.3 पहला अफीम युद्ध और नानकिंग की संधि

पहला अफीम युद्ध शुरू होने से पहले ही, कैंटन व्यवस्था कई कारणों से गड़बड़ा चुकी थी :

- पहला कारण था इस व्यवस्था के बंधनों से बाहर अफीम की तस्करी का खूब बढ़ना,
- दूसरा कारण था 1834 में चीन के साथ अंग्रेजों के व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार की समाप्ति, और
- इससे पैदा होने वाली यह समस्या कि चिंग सरकार इस नई स्थिति से कैसे निपटें।

जब चिंग सरकार को यह सूचना दी गई कि ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार समाप्त होने जा रहा है तो उसने यह अनुरोध किया कि अंग्रेज़ व्यापारियों की गतिविधियों की देखरेख के लिए एक नए अंग्रेज प्रबंधक (एक प्रकार के प्रधान सौदागर) की नियुक्ति की जाए। फिर भी, लार्ड नैपियर से शुरू होने वाले ऐसे तमाम व्यापार अधीक्षक जिन्हें अंग्रेज़ी सरकार ने नियुक्त करके चीन भेजा, वे व्यापारी नहीं बल्कि अंग्रेज़ी सरकार के ऐसे प्रतिनिधि थे, जो केवल सौदागर के रूप में व्यवहार के कायल नहीं थे। इस तरह, 1834-1839 का दौर अंग्रेज़ अधिकारियों और चिंग अधिकारियों के बीच लगातार टकराव का दौर रहा, क्योंकि अंग्रेज़ अधिकारियों की यह मांग थी कि वे चिंग अधिकारियों के साथ सीधे संपर्क करेंगे। कुछ ने बहुत झगड़ालू ढंग से ऐसा किया (जैसे नेपियर) और कुछ ने शांतिपूर्ण ढंग से) जैसे जे. एफ. डेविस और कैप्टन सी इलियट) वैसे तो इस तनाव के कारण सीधे-सीधे वैमनस्य की स्थिति नहीं बनी, फिर भी इसके अपने परिणाम रहे :

- पहले, इसके कारण दोनों पक्षों में क्षोभ और संदेह बना, उन गर्मपंथियों की स्थिति मज़बूत हुई जो एक-दूसरे के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की वकालत करते थे, ऐसे लोग चिंग अधिकारियों में भी थे और अंग्रेज़ व्यापारियों और अधिकारियों में भी।
- दूसरे, अनेक मौकों पर, ब्रिटिश युद्धपोत चीनी जलसीमा में भेजे गए। उन्होंने चिंग अधिकारियों की लड़ने की तैयारी और निगरानी क्षमता की परख की।

इस तरह, मार्च 1839 में अफीम विरोधी नियमों का बलपूर्वक लागू करने के लिए कमिश्नर लिन के कैंटन आने के समय तक वहाँ का वातावरण इतना उत्तेजनापूर्ण हो चुका था, जितना कि एक लंबे अरसे से नहीं रहा था।

कमिश्नर लिन के आने पर, लिन ज़िस्कू ने अफीम व्यापार में लगे अंग्रेज़ व्यापारियों और उनके चीनी सहयोगियों के खिलाफ एक साथ कार्यवाही करने का प्रयास किया। उसने कैप्टेन इलियट ने नेतृत्व में विदेशी व्यापारियों को एक अंतिम चेतावनी दी कि उनके जितनी अफीम हो उसे सौंप दें और एक अनुबंध-पत्र पर हस्ताक्षर करें कि उसके बाद फिर कभी अफीम का व्यापार नहीं करेंगे। जब निश्चित समय तक अंग्रेजों ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी तो, लिन ने आदेश दिया कि विदेशियों के लिए काम कर रहे सभी चीनियों को हटा लिया जाए, और कैंटन में सक्रिय अंग्रेज़ व्यापारियों को घेर लिया जाए। इस कदम से अंग्रेजों की हालत निराशाजनक हो गई और उन्होंने अफीम की लगभग 20,000 पेटियाँ सौंप दीं। लिन ने आगे की कार्यवाही के तौर पर जब्त शुदा अफीम को सार्वजनिक तौर पर जलाने और उसकी राख को समुद्र में फेंकने का काम किया। फिर भी, अफीम सौंपे दिए जाने के बावजूद, अनुबंध-पत्र पर हस्ताक्षर करने जैसे दूसरे मुद्दों को लेकर संघर्ष जारी रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि मकाओ के अंग्रेज़ व्यापारियों पर दबाव बढ़ा और गत्यावरोध पैदा हुआ। 1840 के प्रारंभ में, प्रधानमंत्री पामरस्टन के नेतृत्व वाली अंग्रेज सरकार ने एडमिरल इलियट के नेतृत्व में एक अभियान बल चीन भेजने का फैसला किया। यह बल जून 1840 में चीनी जल सीमा में पहुँचा, जहाँ से वैमनस्य या शत्रुता की शुरुआत हुई। यहाँ हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि वैसे तो युद्ध का कारण अफीम ही दिखाई देता है, लेकिन इसके अलावा कुछ और कारण भी थे। उदाहरण के लिए, आपराधिक अधिकार क्षेत्र को लेकर हमेशा टकराव बना रहा कि किसी चीनी के खिलाफ कोई अपराध करने वाले पश्चिमवासी पर कौन मुकदमा चलाएगा और कौन उसे सजा देगा? चीनी अधिकारी या स्वयं पश्चिम के लोग?

4. लिन के निरीक्षण में अफीम जलाने की चित्रकार की कल्पना

अफीम युद्ध इस मायने में एक विचित्र युद्ध था कि इसमें दो विरोधी शक्तियाँ कभी लगातार एक-दसरे के साथ युद्धरत नहीं रहीं। इसके विपरीत, इसमें नवम्बर 1839 से अगस्त तक कुछ नौसैनिक झड़पें हुई, जिनके बीच-बीच में बातचीत और असफल संधियाँ तथा समझौते होते रहे। कुछ व्यापार भी इसे पूरे दौर में चलता रहा, और दोनों पक्षों के प्रमुख व्यक्तियों के बीच संपर्क के माध्यम कभी पूरी तौर पर नहीं टूटे।

युद्ध छिटपुट होने के पीछे एक कारण यह था कि कैंटन के आसपास जो कार्यवाही का मुख्य स्थल था, वहाँ तक संदेश और सामान पहुँचने में बहुत अधिक समय लग जाता था। उदाहरण के लिए, इंग्लैण्ड से चीन तक की समुद्री यात्रा में महीनों लग जाते थे। एक और कारण था दोनों पक्षों के नेतृत्व देने वाले अधिकारियों की बार-बार बदली होना, क्योंकि चिंग सरकार और पामरस्टन सरकार दोनों ही उन अधिकारियों को बदल देती थीं जिनसे वे संतुष्ट नहीं होती थीं: चीन की तरफ से, कठोर लिन ज़िशु की जगह की चिंग को नियुक्त कर दिया गया। अंग्रेज़ों की तरफ, एक मिरल इलियट को अंग्रेज़ी सेनाओं के कमांडर के पद से हटाकर उसकी ज़गह उसके चेचरे भाई व्यापार अधीक्षक चार्ल्स इलियट को ले आया गया। बाद में अगस्त 1841 में कैप्टन इलियट की जगह भी सर हेनरी पॉटिंगर को नियुक्त कर दिया गया।

युद्ध के दौरान हुई हरेक घटना की ब्यौरेवार चर्चा करना संभव नहीं है। फिर भी, संक्षेप में, पहले अफीम युद्ध की मुख्य घटनाएं निम्नलिखित थीं:

1) अंग्रेज़ी अभियान बल का उत्तर में बेई हो की जल सीमा में पहुँचना और पीकिंग के शाही दरबार तथा राजधानी के लिए खतरा पैदा करना। इसके परिणामस्वरूप लिन को हटा दिया गया और उसकी जगह की शान को नियुक्त किया गया, जिसने अंग्रेज़ी बलों को इस बात के लिए मनाया कि वे दक्षिण लौट जाएं।

2) चुआन पी अधिवेशन का जनवरी, 1841 में होना। इसमें कुछ मांगे रखीं गई जैसे हांगकांग का सत्तांतरण,60 लाख डालर हर्जाना, समान शर्तों पर कैंटन का व्यापार, की चिंग और अंग्रेज़ों द्वारा समान आधार पर अधिकारियों में परस्पर कार्यवाही, जिसे दोनों सरकारों ने त्याग दिया।

3) अंग्रेज़ी सेनाओं द्वारा कैंटन की फरवरी से मई 1841 तक घेराबंदी, जिसके परिणामस्वरूप कैंटन के सौदागरों और अधिकारियों ने उसके लिए "फिरौती" 60 लाख डालर दिए।

4) अगस्त 1841 से अगस्त 1842 तक का अंतिम दौर, जब अंग्रेज़ी सेनाएं उत्तर में यांगसी नदी तक बढ़ गईं और उन्होंने रास्ते में पड़ने वाले कई बंदरगाहों पर कब्जा कर लिया। इसके परिणामस्वरूप बातचीत का दौर चला और नार्नकिंग की संधि पर हस्ताक्षर हुए।
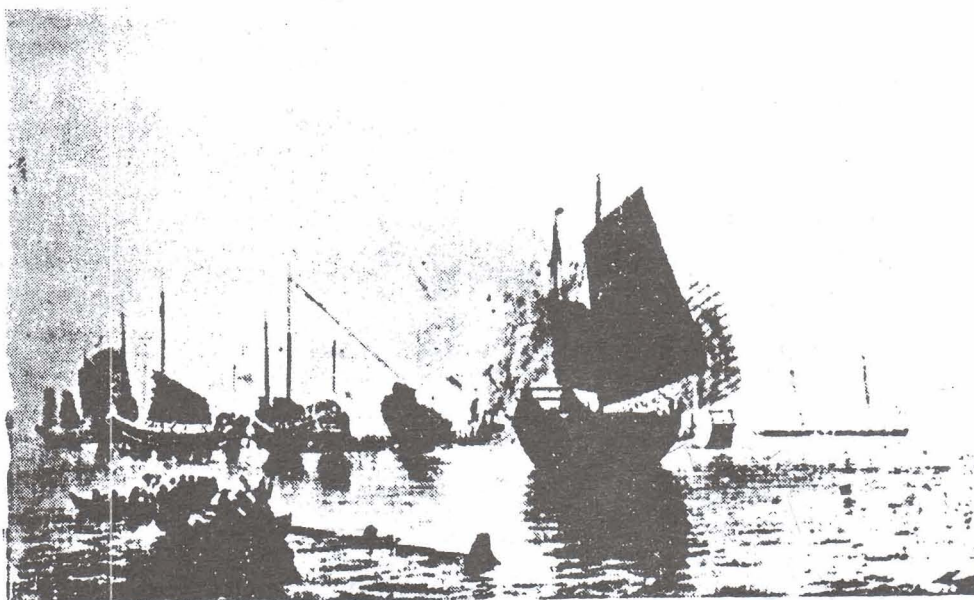
5 चिंग की नौसेना और अंग्रेज़ी युद्ध पोतों के बीच युद्ध (कैंटन 1841)

अगस्त 29, 1842 में सम्पन्न हुई नानकिंग संधि के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे:

1) अंग्रेज़ों को 2 करोड़ 10 लाख चांदी के डालरों का हर्जाना,
2) व्यापार की एकाधिकारवादी को-हांग व्यवस्था की समाप्ति,
3) कैंटन के आलावा, अमोई, फूचो, निंगपो और शंघाई बंदरगाहों को अंग्रेज़ व्यापारियों और उनके परिवारों के लिए व्यापार तथा आवास के वास्ते खोलना,
4) हांगकांग का सत्तांतरण,
5) सरकारी पत्राचार में समानता, और
6) एक निश्चित चुंगी दर।

इस अंतिम प्रावधान पर वास्तव में बेग की पूरक संधि में फैसला किया गया था। बेग संधि पर अक्तूबर 18, 1843 में हस्ताक्षर किए गए, जिसमें आयात शुल्क 5 प्रतिशत और निर्यात शुल्क 1.5 और 10.75 प्रतिशत के बीच निर्धारित किया गया। इस संधि में अंग्रेज़ों को यह अधिकार दिया गया कि उनके अपराधों के लिए उनपर कानूनों के मुताबिक और उनके अपने वाणिज्य दूत द्वारा ही मुकदमा चलाया जाएगा। इसमें यह प्रावधान भी रखा गया कि भविष्य में चीनी सरकार दूसरी ताकतों को और जो भी रियायतें देगी, वे रियायतें अंग्रेज़ों को भी प्राप्त होंगी।

इस शर्मनाक हार के ठीक बाद ही, चिंग सरकार पर अमेरिकी और फ्रांसीसी भी ऐसी ही संधि के लिए दबाव डालने लगे। चिंग सरकार को लगा कि वह ऐसी मांगों को मानने से इंकार नहीं कर सकेगी तो उसने अमेरिका के साथ जुलाई 3, 1844 को वांघसिया संधि की और फ्रांस के साथ अक्तूबर 24, 1844 को कंपोआ संधि की (संधियों और उनके आशयों के बारे में और अधिक जानकारी के लिए इस पाठ्यक्रम की इकाई 7 देखिए)।

इस पूरे युद्ध और परिणामस्वरूप होने वाली संधियों की सबसे बड़ी विडंबना यह रही कि युद्ध के सबसे नज़दीकी कारण, अफीम का कोई ऐसा उल्लेख ही नहीं हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) लगभग दस पंक्तियों में पहले अफीम युद्ध के कारणों के बारे में बताइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) नानकिंग की संधि में क्या-क्या प्रावधान थे?

....
....
....
....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-से वक्तव्य सही (√) हैं और कौन-से गलत (×)?

i) चीन ज़िशु ने अंग्रेज़ों के प्रति कठोर रवैया अपनाया।

ii) पहला अफीम युद्ध छिटपुट किस्म का था।

iii) बेग की संधि के बाद अपराधियों पर चीनी अदालतों में मुकदमा चलाने का प्रावधान रखा गया।

iv) अमेरिकी और फ्रांसिसियों को चिंग सरकार के व्यापार में कोई रियायतें नहीं मिलीं।

6.4 पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति पर चीन की प्रतिक्रिया

पहले अफीम युद्ध के शुरू होने और चीन की पराजय ने चीन और पश्चिमी देशों के संबंधों की पूरी दिशा को ही बदल दिया। यह बदलाव दो स्तरों पर दिखाई दिया:

i) सरकारी नीति के स्तर पर; और

ii) पश्चिम के लोगों के प्रति आम लोगों के दृष्टिकोण के स्तर पर।

सरकारी स्तर पर, पश्चिम के लोग और उनसे व्यवहार की जो समस्या पहले स्थानीय अधिकारियों की एक गैर-महत्त्वपूर्ण समस्या होती थी, वह चिंग सरकार के लिए सिरदर्द बन गई। आम लोगों के स्तर पर, इसने एक नई प्रवृत्ति या धारा को जन्म दिया जो आने वाले दशकों में बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई। यह पश्चिमी घुसपैठियों में प्रति आम लोगों के बैरभाव की धारा थी, जिसने 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के बाद से एक नए चीनी राष्ट्रवाद के उदय की भूमि का काम किया।

6.4.1 ढुलमुल सरकारी नीति

अफीम युद्ध ने उच्च चिंग अधिकारियों के बीच पाए जाने वाले तथाकथित गरमपंथियों (या कट्टरपंथियों) और समझौतावादियों के बीच की खाई को उजागर कर दिया। कमिश्नर लिन ज़िशु सबसे पहला कट्टरपंथी था। वह पश्चिम के लोगों के साथ चिंग साम्राज्य के कायदे-कानूनों के मुताबिक सख्ती से व्यवहार करने में विश्वास करता था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसकी असफलता ने दूसरे गुट, यानी समझौतावादियों को ऊपर उठने का अवसर दिया।

"बर्बरों" के साथ निपटने के जो तरीके चीन में अरसे से परख हुए थे, उनका अनुसरण करते हुए, की शान, यी शान, की यिंग और मू झांग जैसे समझौतावादी अधिकारी पश्चिमी लोगों के साथ खुले तार पर टकराव का रवैया अपनाने के पक्ष में नहीं थे। इसका यह अर्थ नहीं था कि वे आवश्यक तौर पर पश्चिमी लोगों और उनके ध्येयों से सहानुभूति रखते थे। लेकिन, पश्चिम की सैनिक श्रेष्ठता को मानते हुए, उन्हें यह अहसास था कि चिंग सरकार उन्हें सीधे-सीधे ललकारने का खतरा मोल नहीं ले सकती। उनकी नीति का आधार यह तर्क था कि पश्चिमी लोग जो कुछ मांगते हैं, अगर उनमें से कुछ चीज़ें उन्हें शालीनता के साथ दे दी जाएं तो वे आगे कोई परेशानी नहीं खड़ी करेंगे, और चिंग सरकार और भी पराजयों और नुकसानों से बच जाएगी। बहरहाल, समझौतावादियों के सोचने के तरीके में दो घातक खामियां थीं:

i) पहले, उन्होंने चीन में पश्चिमी ताकतों की मांगों और उद्देश्यों का सही आकलन नहीं किया। ये कैंटन व्यवस्था के विरुद्ध कुछ शिकायतों को दूर करने या अफीम व्यापार के वैध घोषित करने तक ही सीमित नहीं थे। घटनाओं ने यह साबित कर दिया कि पश्चिमी ताकतों की और भी बड़ी महत्त्वाकांक्षा यह थी कि वे अपने व्यापार और अन्य हितों के लिए चीन के मार्गों को अपने लिए और भी अच्छी तरह से खोल दें। चिंग सरकार ने जितनी अपनी कमज़ोरी दिखाई और उनकी तुष्टि की, उतना ही ये शक्तियाँ और अधिक रियायतों की मांगों में और भी साहसिक होती गई।

ii) समझौतावादियों के सोचने के तरीके की एक और खामी यह थी कि उन्होंने पश्चिमी ताकतों की उपस्थिति के प्रति आम लोगों के बढ़ते क्षोभ पर ध्यान नहीं दिया। अग्रणी समझौतावादियों में बड़ी संख्या क्योंकि मांचू अधिकारियों की थी, और अग्रणी कट्टरपंथियों में बड़ी संख्या चीनी अधिकारियों की थी, इसलिए इससे मांचुओं और चीनियों के बीच की खाई और चौड़ी हो गई। मांचू शासकों को अंत में ऐसे गद्दारों के रूप में देखा जाने लगा जो देश को विदेशियों के हाथों बेच दे रहे थे। इस तरह, समझौतावादियों की नीति मांचू चिंग वंश के अधिकार की रक्षा करने की होते हुए भी, अंत में जाकर इसके चीनियों के बीच इसके समर्थन और वैधता की जड़ खोदने में ही योगदान दिया।

सन् 1849 से दूसरे अफीम युद्ध होने तक के समय को व्यापक तौर पर कट्टरपंथियों के उदय का दौर कहा जा सकता है। संयोग से यह उस समय हुआ जब 1850 में एक नए विदेश-विरोधी सम्राट ने अपने पूर्ववर्ती के मरने के बाद गद्दी संभाली। कट्टरपंथियों के प्रतिनिधि दक्षिण में शू-गआंग-जिन और ये गिग-झेन और पीकिंग के शाही दरबार में की जुन-काओ और सू-शुन जैसे अधिकारी थे। दो अफीम युद्धों के दौर में कट्टरपंथी गुट की एक बड़ी जीत थी कैंटन शहर में घुसने के अंग्रेज़ों के प्रयास का इसके द्वारा सफल प्रतिरोध किया जाना। फिर भी पश्चिमी देशों की अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा और सैनिक श्रेष्ठता के कारण, और चीनी साम्राज्य के अंदर उथल-पुथल होने के कारण (विशेष तौर पर 1850 के बाद दक्षिण चीन में महान ताईपिंग विद्रोह फैलने के कारण, जिसके बारे में आप खंड 4 में पढ़ेंगे), कट्टरपंथी नीति अधिक समय तक सफल नहीं रह सकी।

6.4.2 चीनी जनता का प्रतिरोध

पहले अफीम युद्ध और सुदृढ़ हो चुकी पश्चिमी ताकतों की कैंटन के आसपास उपस्थिति ने एक महत्त्वपूर्ण नई घटना को जन्म दिया – आम चीनी लोगों का विदेशियों के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध। इस समय तक, पश्चिमी लोगों के साथ सीधे-सीधे जुड़े चीनी समाज के अधिकांश तबके उनके विरुद्ध नहीं थे। वास्तव में अनेक स्थानीय व्यापारियों, नाविकों, कुलियों, तस्करों आदि के लिए पश्चिमी लोगों के साथ व्यापार करने का अर्थ था और अधिक मुनाफा।

बहरहाल, 1841 से शुरू होकर जब अंग्रेज़ी सेनाओं ने कैंटन की घेराबंदी कर ली और वे स्थानीय गांवों में घूमने लगे, तब मुख्य तौर पर किसानों और स्थानीय कुलीन वर्गों के लोगों के आधार पर उनके विरुद्ध शत्रुता का भाव बनने लगा। इसने अनियमित लड़ाकू इकाइयों का रूप ले लिया, जिन्होंने विदेशी सैनिकों की लूटपाट से अपने क्षेत्रों की रक्षा करने का काम संभाल लिया। सरकारी चिंग सैनिकों की काहिली या सुस्ती ओर उनके मनोबल के गिरे होने की तुलना में, इन लोकप्रिय लड़ाकुओं में ऊंचा मनोबल और लड़ने की भावना दिखाई दी। अंग्रेज़ी सेनाओं के साथ सबसे प्रसिद्ध मुठभेड़ कैंटन के पास सान्युआजली गाँव में मई 1841 में हुई। केवल लाठियों और भालों से लैस होकर, कुछ हज़ार किसान लड़ाकुओं ने एक अंग्रेज़ी अभियान बल को सान्युआनली में मार भगाया।
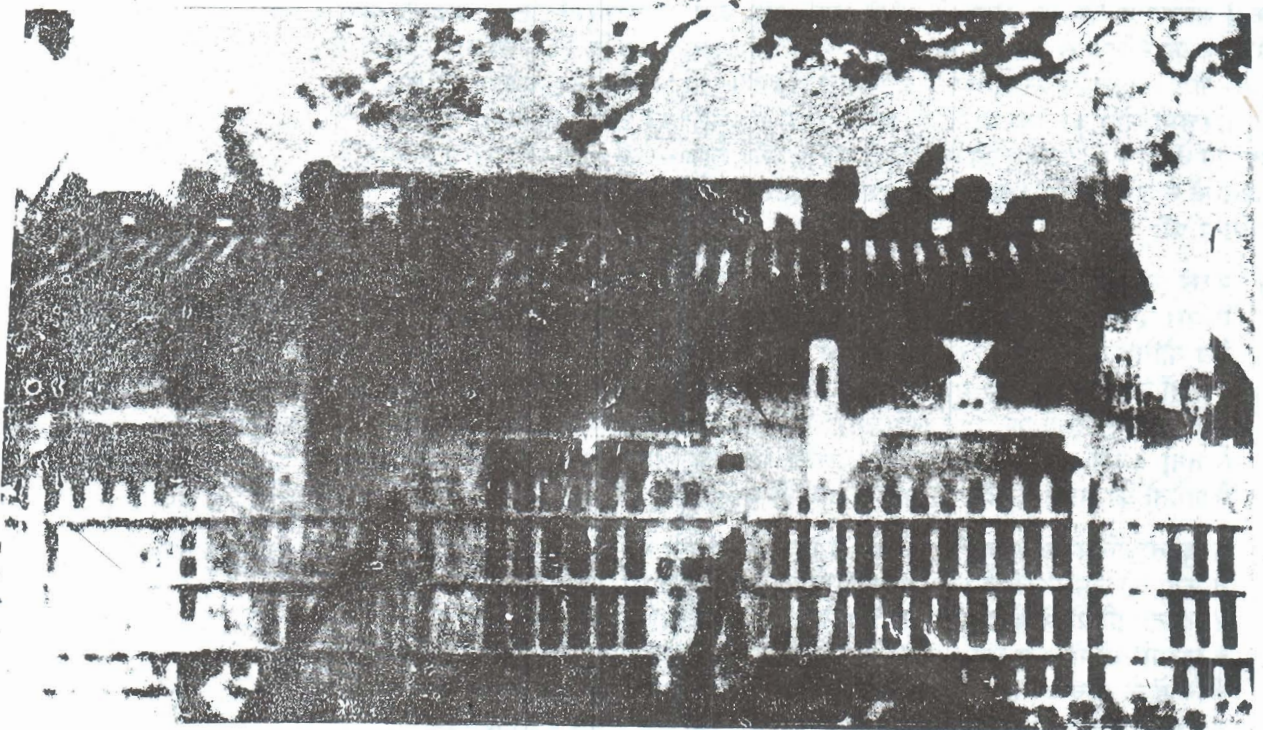
6 सान्युआनली में एक धार्मिक स्थल जहाँ ग्रामीण जनता ने अंग्रेज़ों से टक्कर लेने की शपथ ली

स्थानीय लड़ाकुओं के कारनाभ 1848 में फिर सामने आए जब देहाती और शहरी लड़ाकुओं की मिली-जुली कार्यवाही ने अंग्रेज़ी सैनिकों को कैंटन शहर में घुसने से रोक दिया। इस बार, लड़ाकुओं की कार्यवाही को कैंटन के कट्टरपंथी राज्यपाल, ये मिंग झेन, के नेतृत्व में स्थानीय अधिकारियों का, और उन भूतपूर्व को-हांग सौदागरों का समर्थन भी मिला, जिनकी विशेषाधिकार वाली स्थिति 1842 में नानकिंग संधि पर हस्ताक्षर होने के बाद छिन गई थी।

इस आम लोगों के प्रतिरोध को अंत में विदेशियों को चीन की धरती से निकाल बाहर करने में सफलता तो नहीं मिली, फिर भी इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। विदेशी ताकतों की चीन में उपस्थिति के प्रति आम लोगों को विरोध और चिंग सैनिकों की कायरता के प्रति उनका क्षोभ ही इस दौर में आकार ले रहे चिंग वंश को उखाड़ फैंकने के लिए महान क्रांतिकारी आंदोलन का आधार बना।

7 अंग्रेज़ों के विरुद्ध सान्युआनली की जनता का घोषणा पत्र

8 अंग्रेज़ आक्रमणकारियों को दर्शाता हुआ एक कार्टून

6.5 दूसरा अफीम युद्ध और त्येनसिन की संधि

अंग्रेज़ों की दृष्टि में, चीनियों और उनके बीच बहुत से विवादास्पद या टकराव वाले मुद्दे नानकिंग की संधि के बाद भी अनसुलझे रह गए। मसलन, उन्हें लगा कि :

- अफीम के व्यापार को अभी तक वैध घोषित नहीं किया गया था,
- कैंटन शहर अभी तक उनके लिए मुक्त नहीं था, और
- उनके पास पीकिंग सरकार के साथ समान शर्तों पर सीधे व्यवहार करने का अधिकार नहीं था।

इनके साथ-साथ, असंतोष का एक और गहरा कारण था उनकी आशा के मुताबिक चीन के साथ व्यापार का प्रसार न हो पाना। अंग्रेज़ों का विश्वास था कि इसका समाधान उत्तर में और चीन के अंदरुनी क्षेत्रों में व्यापार के और बंदरगाह खोलकर किया जा सकता था।

इन सभी कारणों ने मिलकर अंग्रेज़ों और उनके सहयोगी फ्रांसीसियों को 1858 में चीन के साथ शत्रुता को फिर से नया कर लेने के लिए उकसाया, भारत में 1857 की महान क्रांति को दबाने के बाद अंग्रेज़ों के लिए चीन के वास्ते अपनी कुछ सेना बचा रखना संभव था, और उन्हें एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना भी नहीं था। उन्हें यह भी पता था कि देश के विभिन्न हिस्सों में बड़े-बड़े विद्रोहों से निपटते-निपटते चिंग साम्राज्य कितना कमज़ोर हो गया था।

सन् 1858 में, आंग्ल-फ्रांसीसी सेनाओं ने कैंटन पर हमला करके उसे जीत लिया। इसके बाद, वे उत्तर की ओर बढ़े, और उन्होंने पहली बार स्वयं पीकिंग पर हमला बोला। खूबसूरत शाही ग्रीष्म महल समेत, राजधानी तहस-नहस हो गई और सम्राट को भागना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि चिंग सरकार को शर्मनाक आत्म-समर्पण करना पड़ा और त्येनसिन की संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि से पश्चिमी ताकतों को अनेक नए लाभ मिले। ग्यारह और बंदरगाह खुल गए और पश्चिमी जहाज़ों को अंदरुनी जलमार्गों पर आने-जाने की आज़ादी मिल गई। देश के अंदर ही वितरित होने वाले सामान पर पश्चिमी व्यापारियों को "लिकिन" कर से छूट मिल गई। पश्चिमी लोगों को देश में कहीं भी बसने और ज़मीन लेने का अधिकार मिल गया। उन्हें पीकिंग में राजनयिक मिशन खोलने की अनुमति मिल गई। उन्हें युद्ध के हर्जाने के रूप में भारी रकमें मिलीं। और, एक और महत्त्वपूर्ण बात यह कि, अफीम पर लगे सभी प्रतिबंधों को अंत में हटा लिया गया। अफीम युद्ध की समाप्ति ने चीन को पश्चिमी विस्तारवादियों के लिए खोलने का एक और अध्याय खोला, लेकिन यह अंतिम अध्याय नहीं था।

6.6 अफीम युद्धों की परस्पर विरोधी विवेचनाएं

यह स्वाभाविक ही है कि उस समय के चीनियों के लिए ये अफीम युद्ध एक हानिकारक नशीले पदार्थ अफीम के व्यापार का अधिकार जताने के उद्देश्य से पश्चिमी ताकतों द्वारा किया गया एक अनाहूत हमला था। दूसरी ओर, अंग्रेज़ और उनके पश्चिमी सहयोगियों ने इन युद्धों को मुक्त व्यापार" के हितों, और समानता के आधार पर राष्ट्रों के बीच आदान-प्रदान के हितों में लड़ी गई लड़ाइयों के रूप में पेश किया। यह विवाद आज भी विद्वानों का पीछा कर रहा है, यद्यपि अब इसकी कुछ शक्ल बदल गई है।

आज, बहुत कम विद्वान इस बात से इंकार करते हैं कि अफीम 1839 में बनने वाली शत्रुता का निकटतम कारण था। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जिस ढंग से चिंग सरकार ने अफीम के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया, अगर उसने ऐसा न किया होता तो पामरस्टन की अंग्रेज़ी सरकार ने अपना अभियान बल उस समय न भेजा होता। उस अर्थ में, पहला अफीम युद्ध सचमुच एक अफीम युद्ध था।

फिर भी, विद्वानों के बीच आज मुख्य तौर पर दो मसलों पर बहस है :

1) दोनों पक्षों के बीच युद्ध किसी समय पर तब भी अनिवार्य होता या नहीं, जब अफीम एक कारण के रूप में मौजूद न होता।
2) क्या युद्ध की जिम्मेदारी पश्चिमी ताकतों पर जाती है, जिन्होंने एक बाहरी देश के विरुद्ध उसी के क्षेत्र पर लड़ाई शुरू की, या यह जिम्मेदारी चीनी साम्राज्य पर जाती है, जिसने विश्व के प्रति अपने पारंपरिक दृष्टिकोण के चिपके रहकर राष्ट्रों के मुक्त व्यापार में

शामिल होने और समान शर्तों पर राजनयिक आदान-प्रदान करने जैसे तथाकथित जन्मजात अधिकार जैसी बातों को मान्यता देने से इंकार कर दिया।

अफीम युद्धों को लेकर चलने वाली निरंतर बहस से उठे ये और दूसरे सवाल इस अर्थ में उपयोगी हैं कि इनसे आधुनिक चीनी इतिहास के विद्यार्थी को उस दौर की नाटकीय घटनाओं के पीछे काम करने वाली गहनतर शक्तियों के बारे में जांच-पड़ताल करने में मदद मिलती है। इनसे उस समय की घटनाओं की प्रासंगिता को आज जो कुछ हो रहा है, उसके साथ रखकर समझने में भी मदद मिलती है, क्योंकि आज भी राष्ट्रीय संप्रभुता के हितों और देशों तथा राज्यों की स्वाधीनता जैसी चीज़ों को ''मुक्त व्यापार'' ''जनतंत्र'' ''मानवाधिकार'' और अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धातों जैसे तथाकथित ''सार्वभौमिक'' सिद्धातों के दावे के मुकाबले में रखा जाता है।

फिर भी, यह इतिहास के विद्वानों की परिपक्वता नहीं होगी कि वे अफीम युद्धों को पेश करते समय केवल इस बात को साबित करने में लग जाएं कि यह अफीम युद्ध था, या यह अफीम युद्ध नहीं था, और कौन-सा पक्ष इसमें गलत था आदि-आदि। अफीम युद्ध के कारणों और घटनाओं का अध्ययन उनकी संपूर्णता में ही, और तमाम सक्रिय जटिल घटनाओं को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए किया जाना चाहिए।

फिर भी, यहाँ यह बात उल्लेख करने योग्य है कि पश्चिमी ताकतों के हाथों पराजय ने कुछ प्रबुद्ध अधिकारियों के दूसरे देशों के साथ चीन के संबंधों के मसले की पड़ताल करने को बाध्य कर दिया। उदाहरण के लिए, लिन ज़िशू ने विदेशों, और वहाँ चीन के प्रति दृष्टिकोण के बारे में जानकारी इकट्ठी की, उसने विदेशी किताबों और अखबारों का अनुवाद भी करवाया। ''ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग पर ज़ोर देने'' की परंपरा का पालन करते हुए वे युआन ने ''विदेशी को हराने के लिए विदेशी से सीखने'' के विचार का प्रचार किया। उत्तरी सीमाओं की रक्षा के लिए भी आवाज़ें उठीं और रूस को एक भावी खतरा बताया गया।

अफीम युद्धों ने चीनी साहित्य पर भी अपनी छाप छोड़ी। अनेक देशभक्ति पूर्ण कृतियों में पश्चिमी शक्तियों के आगे समर्पण के लिए चिंग सरकार की निंदा की गई, और उनका प्रतिरोध करने के लिए जनता के संघर्ष की प्रशंसा की गई। उहाहरण के लिए, वे युआन ने अपनी प्रसिद्ध कविता ''वर्ल्ड सीज़'' (विश्व सागर) में चिंग के समर्पण की निंदा की और झांद बेपिंग ने अपनी कविता ''सानयुआनली'' में किसानों के व्याबहारिक संघर्ष का गुणगान किया।

बोध प्रश्न 3

1) समझौतावादी अधिकारियों के सोचने के तरीके में क्या खामियाँ थीं? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) विदेशियों के विरुद्ध आम चीनी लोगों के प्रतिरोध से आप क्या समझते हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए?

....
....
....

....

....

3) अफीम युद्धों की विभिन्न विवेचनाओं का उल्लेख कीजिए। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6.7 सारांश

पहला अफीम युद्ध (1839-1842) और दूसरा अफीम युद्ध (1858-1860) चीन और पश्चिमी ताकतों के बीच पहले बड़े टकराव का प्रतीक हैं। ऐसे अनेक और टकराव भी हुए, लेकिन ये दो युद्ध एक-दूसरे से जुड़े हैं। पहले इसलिए क्योंकि दोनों युद्धों में अफीम का व्यापार एक प्रमुख कारण था (यद्यपि यह एकमात्र कारण नहीं था), और दूसरे इसलिए क्योंकि पहले युद्ध में अनसुलझे रह गए कुछ मुद्दे सीधे-सीधे दूसरे अफीम युद्ध जाकर जुड़ गए।

दोनों ही युद्धों में चीनी साम्राज्य की सैनिक दृष्टि से श्रेष्ठतर पश्चिमी ताकतों के हाथों करारी हार हुई। इस सैनिक और प्रौद्योगिक खाई को चीनी साम्राज्य कभी नहीं पाट पाया, और इस कारण 1911 में अंतिम रूप से ध्वस्त हो जाने तक यह पश्चिमी ताकतों के दबाव में बना रहा।

अफीम युद्धों का एक तुरंतगामी और सीधा परिणाम था संधियों के आधार पर पश्चिमी ताकतों के साथ चीन संबंधों का पुनर्गठन। लेकिन इन युद्धों के दूरगामी परिणाम भी हुए। जैसे चीनी साम्राज्य का कमज़ोर होना, चीन की पारंपरिक अर्थव्यस्था का गड़बड़ाना, और चीन के पुनरुद्धार के लिए विभिन्न आंदोलनों का उठ खड़ा होना— जिनमें चीन की कुछ पारंपरिक संस्थाओं को सुधारने संबंधी आंदोलन से लेकर पूरी पारंपरिक व्यवस्था को मिटा कर उसकी जगह एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य की स्थापना करने संबंधी आंदोलन तक शामिल थे।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) कैंटन व्यवस्था से आशय उन तमाम व्यापारिक प्रबंधों से है जो 1757 और 1842 के बीच पश्चिमी देशों के लिए चीन में उपलब्ध थे। विस्तृत विवरण के लिए देखिए उपभाग 6.2.2

2) पहले ईस्ट इंडिया कंपनी चांदी और सोने के बदले चीनी सामान खरीदती थी। अफीम के अवैध व्यापार से यह संतुलन ईस्ट इंडिया कंपनी के पक्ष में चला गया, क्योंकि अब चीन से सोना-चांदी बाहर जाने लगा।

3) i) × ii) × iii) √ iv) √ v) ×

बोध प्रश्न 2

1) अपना उत्तर भाग 6.3 के आधार पर लिखिए।
2) भाग 6.3 में उल्लिखित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
3) i) √ ii) √ iii) × iv) ×

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर उपभाग 6.4.1 के आधार पर लिखिए और उसमें उल्लिखित दो बड़ी खामियों का उल्लेख कीजिए।
2) यह एक नई घटना थी कि किसानों ने पश्चिमी ताकतों के विरुद्ध हथियार उठाए, जबकि सरकारी चिंग सेनाएं हार रही थीं। इसके परिणास्वरूप विदेशी ताकतों की चीन में उपस्थिति के विरुद्ध वहाँ के आम लोगों में आक्रोश और चिंग सेनाओं के प्रति क्षोभ उभरा। देखिए उपभाग 6.4.2
3) अपना उत्तर भाग 6.6 के आधार पर लिखें।